

मीरा कनवरिया

बनाम

सुनीता और अन्य

8 दिसंबर, 2005

[ एस. बी. सिन्हा और पी. के. बालासुब्रमण्यन, न्यायमूर्तिगण ]

भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 15 (4), 16 (4), 330 और 332-अनुसूचित जाति की स्थिति-दावा-आरक्षित सीट पर नगर निगम के लिए चुनाव लड़ने के उद्देश्य से-जन्म से उच्च वर्ग के हिंदू से संबंधित और विवाह द्वारा अनुसूचित जाति का दर्जा प्राप्त करने वाले उम्मीदवार द्वारा-परिवार के बुजुर्गों द्वारा स्वीकार किया गया विवाह- समुदाय द्वारा उसकी स्वीकृति का कोई प्रमाण नहीं- जन्म से अनुसूचित जाति होने के आधार पर प्रमाण पत्र गलत घोषणा पर जारी किया गया है-निर्धारित: एक व्यक्ति जो एक उच्च जाति का हिंदू है और किसी भी सामाजिक या शैक्षिक पिछड़ेपन के अधीन नहीं है, केवल विवाह के कारण अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं बन सकता है -परिवार के बुजुर्गों द्वारा विवाह को स्वीकृति, समुदाय द्वारा स्वीकृति नहीं कहा जा सकता है---इस बात के समुचित प्रमाण के अभाव में कि उसकी शादी को समुदाय द्वारा स्वीकार किया गया है, उसे वंचित लोगों के लिए कुछ सीटें आरक्षित करने के लिए राज्य द्वारा किए गए प्रावधानों को विफल करने की अनुमति नहीं

दी जा सकती है-संरक्षी विभेद का दावा करने वाले विशेष वर्ग में परिवर्तन को साबित करने का बोझ उस व्यक्ति पर होगा जो इसकी पुष्टि करता है- दिल्ली नगर निगम अधिनियम, 1957-साक्ष्य अधिनियम, 1872-धारा 101।

प्रत्यर्थी संख्या 1, जाति द्वारा एक राजपूत ने अनुसूचित जाति के एक सदस्य से शादी की। उन्होंने आवेदन किया और जन्म से अनुसूचित जाति से संबंधित होने का प्रमाण पत्र प्राप्त किया। उसी के अनुदान के खिलाफ शिकायत पर, एक जांच की गई, और यह पाया गया कि प्रमाण पत्र गलत घोषणा के आधार पर जारी किया गया था। उसके पक्ष में दिया गया प्रमाण पत्र रद्द कर दिया गया था।

उन्होंने अनुसूचित जाति की महिला के लिए आरक्षित एक सीट पर नगर पार्षद के लिए चुनाव लड़ा। उन्हें निर्वाचित घोषित किया गया। अपीलार्थी चुनाव हार गया। एक 'के' ने दिल्ली नगर निगम अधिनियम, 1957 के तहत एक चुनाव याचिका दायर की जिसमें अनुरोध किया गया कि अपीलार्थी को प्रतिवादी संख्या 1 के रूप में निर्वाचित घोषित किया जाए, जिसे केवल उसकी शादी के कारण अनुसूचित जाति से संबंधित नहीं माना जा सकता था। अपीलार्थी को उसमें प्रत्यर्थी रखा गया था। जिला न्यायाधीश द्वारा उक्त याचिका अनुमेय की गई थी, यह मानते हुए कि, प्रत्यर्थी ने अनुसूचित जाति का प्रमाण पत्र हेरफेर कर प्राप्त किया था एवं अनुसूचित जाति के व्यक्ति के साथ अपनी शादी के कारण अनुसूचित जाति

का दर्जा प्राप्त नहीं किया जा सकता है। उन्होंने रिट याचिका दायर की जिसमें उच्च न्यायालय ने कहा कि जिला न्यायाधीश का निर्णय अरक्षणीय था क्योंकि पहला प्रत्यर्थी को उसके पति के परिवार और समुदाय द्वारा स्वीकार किया गया था; और यह कि संविधान के अनुच्छेद 15 (4) और 16 (4) में निहित आरक्षण के सिद्धांत उस मामले में अलग होंगे जिसमें कोई व्यक्ति उन लाभों का दावा करता है जो अनुसूचित जाति से संबंधित व्यक्ति के कारण हो सकते हैं।

इस न्यायालय में अपील में, प्रथम प्रतिवादी ने अन्य बातों के साथ-साथ प्रारंभिक आपत्ति अपीलार्थी के अपील दायर करने के अधिकार के संबंध में इस आधार पर उठाया कि अपीलार्थी ने न तो लिखित बयान दायर किया था और न ही निचली अदालत के समक्ष कोई मौखिक तर्क दिया था।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया

1. अपील दायर करने के लिए अपीलार्थी के अधिकार के संबंध में आपत्ति जताने वाली दलील धारणीय नहीं है। वर्तमान मामले में अपीलार्थी ने अपने वकील के माध्यम से चुनाव याचिका में भाग लिया, हालाँकि उसने लिखित बयान दायर नहीं किया होगा। वह एक आवश्यक पार्टी थी। चुनाव याचिका में प्रार्थना की गई थी कि उन्हें निर्वाचित घोषित किया जाए। चुनाव याचिका आंशिक रूप से सफल रही। प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा उसके विरुद्ध

की गई अपील में, केवल अपीलार्थी ही प्रतियोगी प्रत्यर्थी था। चुनाव याचिका में की गई प्रार्थनाओं में से एक उनके लाभ के लिए थी। उन्होंने वर्तमान अपील केवल इसलिए दायर की क्योंकि वह उच्च न्यायालय के फैसले से व्यथित हैं। [656 - ई]

थम्मन्ना बनाम के. वीरा रेड्डी और अन्य, [1980] 4 एस. सी. सी 62, से अन्तर किया गया

2.1. एक व्यक्ति जो एक उच्च जाति का हिंदू है और अपने जीवन में किसी भी सामाजिक उत्पीड़न या शैक्षिक पिछड़ेपन के अधीन नहीं है; अकेले विवाह के कारण अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं बन सकता है। किसी भी समुचित सबूत के अभाव में उन्हें वंचित लोगों के लिए कुछ सीटें आरक्षित करने के लिए राज्य द्वारा किए गए प्रावधानों को विफल करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। [660 - जी; 661-ए]

2.2. जिला न्यायाधीश द्वारा तथ्य के निष्कर्ष पर पहुँचना कि उसकी शादी वैदिक हिंदू संस्कारों के अनुसार हुआ था और उसकी शादी को उसकी बिरादरी द्वारा स्वीकार कर लिया गया है जिसका अर्थ है कि केवल उसके पति के परिवार के बुजुर्गों द्वारा उसकी शादी को स्वीकार किया गया है, यह नहीं माना जा सकता है उसकी शादी को उसके पति के समुदाय द्वारा स्वीकार किया गया था। यह कहना एक बात है कि एक अग्र जाति की

महिला को उस समुदाय द्वारा स्वीकार किया गया है जिससे उसका पति संबंधित है; लेकिन कहने के लिए एक और बात यह है कि उसकी शादी को केवल उसके पति के परिवार ने स्वीकार किया है। उसकी शादी को देखते हुए जाति परिवर्तन के संबंध में प्रश्न हालांकि हिंदुओं के संबंध में प्रासंगिक हो सकता है, लेकिन जब जाति परिवर्तन का प्रश्न नागरिकों के एक विशेष वर्ग से संबंधित श्रेणी के लिए संदर्भित है, जिन्हें संरक्षी विभेद और सकारात्मक कार्रवाई की आवश्यकता होती है, एक अलग नियम लागू होगा। इसके लिए प्रमाण का भार निर्विवाद रूप से उस व्यक्ति पर होगा जो इसकी पुष्टि करता है। [ 661 - बी, ई, एफ]

पुनीत राय बनाम दिनेश चौधरी, [2003] 8 एस. सी. सी. 204, पर निर्भरता रखी गई। ई. वी. चिन्नैया आदि बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य, [2005] 1 एस. सी. सी. 394 और केरल राज्य एवं अन्य बनाम वी. चंद्र मोहनन, [2004] 3 एस. सी. सी. 429, का उल्लेख किया गया है।

2.3. दिल्ली नगर निगम अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों के संदर्भ में, नामांकन दाखिल करने के समय, घोषणा के रूप में, उक्त उद्देश्य हेतु, पहले प्रतिवादी के लिए जाति प्रमाण पत्र पेश करना आवश्यक नहीं था। लेकिन यदि कोई विवाद या संदेह उत्पन्न होता है, तो इस सवाल के संबंध में कि, क्या नामांकन दाखिल करने के लिए पूर्ववर्ती शर्तों को पूरा

किया गया है या नहीं, इस तरह का जाति प्रमाण पत्र, उक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए आवश्यक था। निर्वाचन अधिकारी को प्रथम दृष्टया इस निष्कर्ष पर पहुंचने की आवश्यकता थी कि उम्मीदवार अनुसूचित जाति का था। उन्होंने इस आधार पर अनुसूचित जाति प्रमाण पत्र देने के लिए आवेदन किया कि वह जन्म से अनुसूचित जाति की हैं। उनका दावा गलत पाया गया है। जब तक यह तथ्य के रूप में स्थापित नहीं होता है कि उसे समुदाय द्वारा अनुसूचित जाति के सदस्य के रूप में स्वीकार किया गया था-जो उसके पति के परिवार द्वारा उसकी शादी की स्वीकृति से अलग था, वह अपने आरक्षण के लाभ का दावा नहीं कर सकती है। [662 – बी-डी]

शोभा हैमयती देवी बनाम सेट्टी गंगाधर स्वामी और अन्य, [2005] 2 एस. सी. सी. 244 और संध्या ठाकुर बनाम विमला देवी कुशवाह और अन्य, जेटी (2005) 1 एससी 556, पर निर्भरता रखी गई।

सी. एम. अरुमुगम बनाम एस. राजगोपाल और अन्य, [1976] 1 एस. सी. सी. 863; प्राचार्य, गुंटूर मेडिकल कॉलेज, गुंटूर और अन्य बनाम वी. वाई. मोहन राव, [1976] 3 एससीसी 411 और कैलाश सोनकर बनाम श्रीमती. माया देवी, [1984] 2 एस. सी. सी 91, से अन्तर किया गया।

एन. ई. होरो बनाम श्रीमती जहां आरा जयपाल सिंह, ए.आई.आर. (1972) एस. सी. 1840; लिलीकुट्टी बनाम जाँच समिति, एस. सी. और

एस. टी. और अन्य, जे. टी. (2005) 12 एस. सी. 569, का उल्लेख किया गया।

3. उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में एक प्रकट्य त्रुटि कि, एक ओर संविधान के अनुच्छेद 15 (4) और 16 (4) और दूसरी ओर अनुच्छेद 330 और 332 के तहत आरक्षण के प्रयोजन अलग-अलग हैं।

[664 - डी]

शोभा हैमयती देवी बनाम सेट्टी गंगाधर स्वामी और अन्य, [2005] 2 एस. सी. सी. 244 पर निर्भरता रखी गई।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील सं. 7306/2005

दिल्ली उच्च न्यायालय के एम (एम) सं. 1241/ 2004 निर्णय और आदेश दिनांक 29.11.2004, से।

सुश्री पिंगी आनंद, राजेश रंजन, डी. एन. गोबर्धन और सुश्री गीता लूथरा, अपीलार्थी के लिए।

आर. के. जैन, विपिन गोगिया, सुश्री जसप्रित गोगिया और घुरिंदर पाल सिंह उत्तरदाताओं के लिए।

न्यायालय का निर्णय एस. बी. सिन्हा, न्यायमूर्ति, द्वारा सुनाया गया।

अनुमति प्रदत्त।

पृष्ठभूमि तथ्य:

इस प्रकरण में प्रथम उत्तरदाता जाति से राजपूत थी। उसने घनश्याम नामक व्यक्ति, जो अनुसूचित जाति का सदस्य था, से 09.12.2000 को शादी की। शादी वैदिक हिंदू संस्कारों के अनुसार की गई थी। उनके आवेदन पर, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली के उप-मंडल मजिस्ट्रेट (एस. डी. एम.) द्वारा उन्हें जन्म से अनुसूचित जाति से संबंधित होने का प्रमाण पत्र जारी किया गया, जिसमें उन्हें रामाये की बेटी के रूप में वर्णित किया गया है, जो वास्तव में उनके पति के बड़े भाई के ससुर थे।

यह शिकायत मिलने पर कि, उक्त प्रमाणपत्र में गलत घोषणा की गई है क्योंकि वह किसी चिन्ना सिंह की बेटी थी न कि रामाये की, अनुमंडल मजिस्ट्रेट द्वारा जाँच कराई गई थी। उक्त आरोप सही पाए गए। यह भी पाया गया कि प्रथम उत्तरदाता के जेठानी का नाम भी सह-संयोग से सुनीता था। उक्त आधार पर, उसके पक्ष में दिया गया प्रमाण पत्र दिनांक 10-07-2002 के एक आदेश द्वारा रद्द कर दिया गया था और भारतीय दंड संहिता की धारा 406, 420, 469 और 471 के तहत एक आपराधिक मामला दर्ज किया गया था। उक्त आपराधिक मामला अभी भी लंबित है।

चुनाव कार्यवाही:

इसमें प्रथम उत्तरदाता ने नगरपालिका के लिए, वार्ड संख्या 20, दिल्ली नगर निगम के सुभाष नगर वार्ड, विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र संख्या 13 से पार्षद के लिए चुनाव लड़ा, जो अनुसूचित जाति की महिला के लिए



आरक्षित सीट थी। उन्हें निर्वाचित घोषित किया गया। इसमें अपीलार्थी भी एक उम्मीदवार थी। जबकि प्रथम उत्तरदाता को 14,757 वोट मिले, अपीलार्थी को 13,755 वोट मिले।

कृष्ण लाल नामक व्यक्ति ने जिला न्यायाधीश के समक्ष एक चुनाव याचिका दायर की। दिल्ली नगर निगम अधिनियम, 1957 के प्रावधानों के संदर्भ में, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ इस आशय की प्रार्थना की गई थी कि, अपीलार्थी को निर्वाचित घोषित किया जाए। उक्त कार्यवाही में चुनाव याचिकाकर्ता का तर्क था कि चूंकि इसमें प्रथम प्रतिवादी का जन्म एक उच्च जाति के परिवार में हुआ था, इसलिए उसे केवल उसकी शादी के कारण अनुसूचित जाति से संबंधित नहीं माना जा सकता था। अपीलार्थी को निर्विवाद रूप से प्रत्यर्थी संख्या 2 के रूप में आलेखित किया गया था। उक्त कार्यवाही में, विद्वान न्यायाधीश ने अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित विवाद्यकों को विरचित किया:

"4. क्या प्रत्यर्थी संख्या 1 अनुसूचित जाति की श्रेणी का है?

5. क्या प्रत्यर्थी संख्या 1 ने दिल्ली में नगरपालिका चुनाव लड़ने की अपनी पात्रता के उद्देश्य से, अनुसूचित जाति की श्रेणी के रूप में अधिसूचित जाटव के साथ अपनी शादी के आधार पर, अनुसूचित जाति का दर्जा प्राप्त किया है?

6. क्या वार्ड संख्या 20 से नगर पार्षद के रूप में प्रतिवादी नंबर 1 का चुनाव, याचिका में उल्लिखित तथ्यों पर अमान्य घोषित किया जा सकता है?

7. यदि विवाद्यक संख्या 6 का सकारात्मक निर्णय लिया जाता है तो क्या प्रतिवादी संख्या 2 वार्ड संख्या 20 से नगरपालिका पार्षद के रूप में निर्वाचित घोषित होने का हकदार है?"

विवाद्यक संख्या 4 और 5 को एक साथ विचार के लिए लिया गया। अन्य बातों के साथ-साथ, श्रीमती वलसम्मा पॉल बनाम कोचीन विश्वविद्यालय एवं अन्य, ए. आई. आर. (1996) एस. सी. 1011, के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए, विद्वान न्यायाधीश ने राय दी:

"25. प्रत्यर्थी संख्या 1 की प्रतिपरीक्षा में, उपरोक्त गवाही को देखते हुए, मेरे दिमाग में इस बात को मानने के अलावा, कोई संदेह नहीं बचा है कि, प्रतिवादी संख्या 1 ने, कानूनी प्रक्रिया को धोखा देकर, अनुसूचित जाति प्रमाण पत्र में हेरफेर किया है। किसी भी तरह से यह विनिश्चित नहीं किया जा सकता है कि, उन्होंने केवल अनुसूचित जाति के व्यक्ति के साथ अपनी शादी के कारण अनुसूचित जाति का दर्जा

प्राप्त किया था। इसलिए, ये दोनों विवाद्यक प्रतिवादी संख्या 1 के खिलाफ निर्णित किए जाते हैं।"

उपरोक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, प्रथम प्रत्यर्थी का चुनाव शून्य और अप्रभावी माना गया था एवं उसे परिणामस्वरूप अपास्त किया गया था। हालांकि, विवाद्यक को संख्या 7 को आवेजित नहीं किया गया था।

उच्च न्यायालय की कार्यवाही:

एक रिट याचिका दिल्ली उच्च न्यायालय में, पहले प्रतिवादी द्वारा इसके खिलाफ दायर की गई थी। उच्च न्यायालय ने अपने फैसले में इस न्यायालय के कई फैसलों पर ध्यान दिया और कहा कि चूंकि प्रथम प्रतिवादी को उसके पति के परिवार और बिरादरी द्वारा स्वीकार किया गया था, इसलिए विद्वान जिला न्यायाधीश का फैसला अस्थिर था। उच्च न्यायालय ने *वलसम्मा पॉल* (ऊपर वर्णित) से, इस आधार पर अंतर किया गया कि, भारत के संविधान के अनुच्छेद 15 (4) और 16 (4) में निहित आरक्षण का सिद्धांत उस मामले में अलग होगा जिसमें व्यक्ति, अन्य लाभों की पात्रता का दावा करता है जो अनुसूचित जाति के होने के कारण प्राप्त होते हैं। इसके अलावा यह राय दी गई कि विद्वान जिला न्यायाधीश ने प्रथम प्रतिवादी की इस दलील को स्वीकार नहीं करने में त्रुटि की, कि उसे उसके पति के समुदाय द्वारा स्वीकार नहीं किया गया था। एस. डी. एम.

द्वारा अनुसूचित जाति प्रमाण पत्र के बाद में रद्द होने को अप्रासंगिक माना गया।

अपील की रखरखाव क्षमता:

श्री आर. के. जैन, प्रथम प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील ने, शुरुआत में, इस अपील को बनाए रखने के लिए अपीलार्थी के अधिकार के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति ली थी, जो विद्वान विचारण न्यायाधीश के निष्कर्षों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है कि अपीलार्थी ने यहां कोई लिखित बयान दायर नहीं किया था और न ही उसकी ओर से कोई मौखिक तर्क दिए गए थे। इस संबंध में, *थमन्ना बनाम के. वीरा रेड्डी और अन्य*, [ 1980 ] 4 एससीसी 62 पर निर्बाध निर्भरता रखी गई है। हम उक्त तर्क को स्वीकार करने के लिए राजी नहीं हैं।

थमन्ना (ऊपर वर्णित) में, इस न्यायालय ने पाया कि किसी भी स्तर पर अपीलार्थी ने कार्यवाही में कोई भी भाग नहीं लिया। लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 116-सी को ध्यान में रखते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यदि व्यक्ति निम्नलिखित शर्तों को पूरा करता है तो वह अपील को सम्पोषित करने का हकदार होगा:

"(1) कि अपील की विषय-वस्तु उच्च न्यायालय द्वारा, निर्वाचन याचिका में, पक्षकारों के बीच, सभी या किन्हीं

विवादसम्मत मामलों के अन्तर्गत, अधिकारों का एक निर्णायक निर्धारण है,

(2) कि अपील करने वाला व्यक्ति चुनाव याचिका में एक पक्ष रहा है एवं

(3) कि वह एक "व्यथित व्यक्ति" है, जो कि वह पक्षकार है जो उक्त निर्धारण से *प्रतिकूल रूप से प्रभावित* हुआ है ।"

वास्तव में यह पाया गया कि स्थिति संख्या 1 और 3 को संतुष्ट नहीं किया गया था, यह मानते हुए:

" ..... उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी किसी भी स्तर पर प्रतिवाद में शामिल नहीं हुआ। उन्होंने कोई लिखित कथन या हलफनामा दाखिल नहीं किया। उन्होंने किसी वकील को नियुक्त नहीं किया। उन्होंने चुनाव याचिकाकर्ता और चुनाव लड़ने वाले प्रतिवादी द्वारा पेश किए गए गवाहों से जिरह नहीं की। वह गवाह-कक्ष में उपस्थित नहीं हुआ। उन्होंने किसी भी तर्क का जवाब नहीं दिया। संक्षेप में, उन्होंने उच्च न्यायालय के समक्ष पहले की कार्यवाही में भाग लेने के लिए कुछ भी ठोस नहीं किया था।"

इसमें आगे यह देखा गया कि अपीलार्थी चुनाव याचिका के लिए एक आवश्यक पक्षकार नहीं था और इस प्रकार, चुनाव याचिकाकर्ता के लिए प्रतिवादी के रूप में उसे शामिल करना अनिवार्य नहीं था।

उक्त निर्णय का तत्काल मामले में प्रवर्तन नहीं होता है जहां अपीलार्थी ने अपने वकील के माध्यम से चुनाव याचिका में भाग लिया था। यद्यपि उसने लिखित कथन दायर नहीं किया हो। वह एक आवश्यक पार्टी थी। चुनाव याचिका में एक प्रार्थना की गई थी कि उन्हें निर्वाचित घोषित किया जाए। हम यहाँ पहले भी देख चुके हैं कि चुनाव याचिका आंशिक रूप से सफल रही है। प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा उसके विरुद्ध की गई अपील में, केवल अपीलार्थी ही प्रतियोगी प्रत्यर्थी था। चुनाव याचिका में की गई प्रार्थना (बी) उनके लाभ के लिए थी। उन्होंने वर्तमान अपील केवल इसलिए दायर की क्योंकि वह उच्च न्यायालय के फैसले से व्यथित हैं।

तर्क:

गुणावगुण के आधार पर, अपीलार्थी की ओर से पेश विद्वान वकील सुश्री पिंगी आनंद ने कहा कि उच्च न्यायालय का निर्णय धारणीय नहीं है क्योंकि यह शोभा हैमवती देवी बनाम सेट्टी गंगाधर स्वामी और अन्य, [2005] 2 एस. सी. सी. 244 के मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले के विपरीत है, जिसमें हम में से एक (न्यायमूर्ति बालासुब्रमण्यन) सदस्य थे।

यह आग्रह किया गया कि प्रथम प्रतिवादी द्वारा प्राप्त प्रमाण पत्र संविधान के साथ धोखाधड़ी थी। इस संबंध में, लिलीकुट्टी बनाम जाँच समिति, एस. सी. और एस. टी. और अन्य, जेटी (2005) 12 एससी 569 पर निर्भरता रखी गयी है ।

दूसरी ओर, श्री जैन के अनुसार, इस मामले की तथ्यों और परिस्थितियों में, प्रथम प्रतिवादी द्वारा की गई कथित धोखाधड़ी यह मानने के उद्देश्य से निवारक नहीं होगी कि वह अनुसूचित जाति की सदस्य बन गई क्योंकि उसकी शादी को समुदाय द्वारा स्वीकार कर लिया गया था। सी. एम. अरुमुगम बनाम एस. राजगोपाल और अन्य, [1976] 1 एस. सी. सी. 863, प्राचार्य, गुंटूर मेडिकल कॉलेज, गुंटूर और अन्य बनाम वी. वाई. मोहन राव, [1976] 3 एससीसी 411 एवं कैलाश सोनकर बनाम श्रीमती. माया देवी, [1984] 2 एस. सी. सी. 91, में इस न्यायालय के निर्णयों पर निर्बाध निर्भरता रखी गई और, यह तर्क दिया गया था कि उच्च न्यायालय द्वारा प्राप्त तथ्य के निष्कर्ष को देखते हुए कि, उन्हें समुदाय द्वारा स्वीकार किया गया था, विवादित निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए।

यह आलेखित किया गया था कि शोभा हेमवती देवी, (ऊपर) और लिलीकुट्टी (ऊपर), में इस न्यायालय के फैसलों में भी, जो सवाल विचार के लिए था, वह यह था कि क्या अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के लड़के के साथ एक उन्नत वर्ग की लड़की द्वारा शादी करने पर, जाति

बदल जाएगी क्योंकि इस तरह वह अपने पति के परिवार में प्रत्यारोपित हो जाती है।

जिला न्यायाधीश के निष्कर्ष:

हमारे सामने उठाए गए कानून के प्रश्नों पर ध्यान देने से पहले, हम विद्वान जिला न्यायाधीश द्वारा प्राप्त तथ्य के निष्कर्षों पर ध्यान देते हैं। विद्वान जिला न्यायाधीश ने केंद्र सरकार के एक परिपत्र पत्र पर भरोसा किया जिसमें कहा गया था:

"मार्गदर्शक सिद्धांत यह है कि कोई भी व्यक्ति जो जन्म से अनुसूचित जाति/जनजाति का नहीं था को अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य, केवल इसलिए माना जाएगा क्योंकि उसने अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित व्यक्ति से शादी की है"

एन. ई. होरो (ऊपर) को भी इस आधार पर मतांतरित किया गया था कि उसमें मुंडा जनजाति के व्यक्ति से शादी करने वाली महिला ने उस प्रथा को साबित कर दिया था जिसके द्वारा उसे शादी के बाद, जनजातिय समुदाय में शामिल किया गया था, जो तथ्य तत्काल मामले में अनुपस्थित है:

"..... यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण होगा कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने अपने प्रतिपरीक्षण में यह स्वीकार किया है कि उसकी



शादी वैदिक हिंदू संस्कार के अनुसार हुई थी और शादी से पहले या शादी के समय या शादी के पश्चात, उसकी जाति को राजपूत से जाटव में बदलने के लिए कोई विशेष समारोह आयोजित नहीं किया गया था। उन्होंने आगे गवाही दी कि जाटव समुदाय की कोई पंचायत, उन्हें जाटव जाति के सदस्य के रूप में स्वीकार करने के लिए, आयोजित नहीं हुई थी। हालाँकि, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने अपने मुख्य परीक्षण में दाखिल किए गए शपथ पत्र प्रदर्श आर-1 के परिच्छेद 3 में गवाही दी है कि उसे बिरादरी/जाटव समुदाय द्वारा अपने सदस्य के रूप में पूरी तरह से स्वीकार किया गया था। उसने उक्त बात साबित करने के लिए, स्वयं के ससुर, पति और उसके पति के तीन और रिश्तेदारों को परीक्षित करवाया है, जिन्होंने सभी ने गवाही दी है कि उन्होंने प्रत्यर्थी संख्या 1 का जाटव पति के साथ विवाह स्वीकार कर लिया था। और कि वे उस शादी में शामिल हुए थे। इसके सम्मुख, याचिकाकर्ता के वकील ने प्रतिपरीक्षा में प्रतिवादी संख्या 1 से अपने प्रदर्श P1 हलफनामे में उपयोग किए गए शब्द "बिरादरी" की व्याख्या करने के लिए कहा। चूंकि उन्होंने अपने शपथ पत्र आर 1 के परिच्छेद 3 में "बिरादरी" शब्द के अर्थ को यह कहते हुए स्पष्ट किया कि "बिरादरी" शब्द से

उनका तात्पर्य अपने पति के परिवार के बुजुर्ग था। प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा अपने प्रतिपरीक्षण में आलेखित उक्त स्थिति, उसकी इस बात को सही नहीं ठहराती है कि उसे किसी प्रथा या किसी अन्य हिंदू परंपरा के अनुसार जाटव समुदाय में शामिल कराया गया था।"

जाति का मुद्दा:

यह विवादित नहीं है कि शादी वैदिक हिंदू संस्कारों के अनुसार हुई थी। इस शादी में उनके ससुर, पति और तीन अन्य रिश्तेदार शामिल हुए थे, जिन्होंने कहा कि उन्होंने उसके जाटव पति के साथ शादी को स्वीकार कर लिया था और वे उस शादी में शामिल हुए थे। "बिरादरी" शब्द को प्रथम उत्तरदाता द्वारा यह कहते हुए भी समझाया गया है कि यह उसके पति के परिवार के बुजुर्गों को दर्शाता है। यह कहना एक बात है कि एक अगड़ी जाति की महिला को उस समुदाय द्वारा स्वीकार किया गया है जिससे उसका पति संबंधित है; लेकिन यह कहना दूसरी बात है कि उसकी शादी को केवल उसके पति के परिवार द्वारा स्वीकार किया गया है। उसके विवाह को ध्यान में रखते हुए जाति परिवर्तन के संबंध में प्रश्न हालांकि हिंदुओं के संबंध में प्रासंगिक हो सकता है, लेकिन जब जाति परिवर्तन का प्रश्न नागरिकों के एक विशेष वर्ग से संबंधित श्रेणी के लिए संदर्भित किया जाता है, जिन्हें सुरक्षात्मक विभेद और सकारात्मक कार्रवाई की

आवश्यकता होती है, तो एक अलग नियम लागू होगा। इसके लिए सबूत का भार निर्विवाद रूप से उस व्यक्ति पर होगा जो इसका आलेख करता है।

पुनीत राय बनाम दिनेश चौधरी, [2003] 8 एस. सी. सी. 204, जिसमें हम में से एक सदस्य थे, इस न्यायालय ने राय दी:

"प्रत्यर्थी की ओर से कुछ निर्णयों का उद्धरण भी प्रस्तुत किया गया है, लेकिन उन निर्णयों से उत्तरदाता को कोई मदद नहीं मिलेगी।

जीत मोहिंदर सिंह बनाम हरमिंदर सिंह जस्सी पर निर्भरता रखी गयी है, जहाँ यह अभिनिर्धारित किया गया है कि एक पक्ष जिस पर एक तथ्य को साबित करने का भार है, लेकिन अपनी जिम्मेदारी निभाने में विफल रहता है, उसके लिए दूसरे पक्ष द्वारा गवाह के गैर-परीक्षण का तथ्य, अवलंब हेतु उपलब्ध नहीं हैं। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अपीलार्थी दूसरे पक्षकार की कमजाेरी से स्वयं को शक्ति प्रदत्त नहीं कर सकता हैं। हम महसूस करते हैं कि यह मामला हस्तगत मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों में लागू नहीं होगा। दूसरी ओर, प्रतिवादी 1 के विशेष ज्ञान के भीतर तथ्यों को साबित करने के लिए, जिम्मेदारी उस पर होगी। हम पहले ही मान चुके हैं कि प्रतिवादी के मामले का सबसे

अच्छा सबूत है कि उसकी माँ एक पासी थी, जिसका विधारण किया गया। इस संबंध में, हम धारा 106 साक्ष्य अधिनियम का अवलोकन कर सकते हैं जो निम्नानुसार है:

106. जब कोई तथ्य विशेष रूप से किसी व्यक्ति के ज्ञान में हो, उस तथ्य को साबित करने का भार उस पर है। "

आगे यह राय दी गई:

"किसी व्यक्ति की जाति का निर्धारण प्रथा द्वारा शासित होता है। प्रथागत हिन्दू विधि के अंतर्गत, एक व्यक्ति अपने पिता की जाति को उत्तराधिकार में प्राप्त करता है इस मामले में, यह इनकार या विवादित नहीं है कि प्रतिवादी के पिता "कुर्मी" जाति के थे। इसलिए वह अनुसूचित जाति का सदस्य नहीं था। पिता की जाति, इसलिए, किसी भी कानून के अभाव में यह निर्धारक कारक होगा।"

इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि राज्य के पास, किसी ऐसे व्यक्ति के लिए जो आरक्षित श्रेणी से संबंधित नहीं है, के लिए निर्वाचन क्षेत्र आरक्षित करने का कोई अधिकार नहीं होगा, जिसके लाभ के लिए इसका गठन एक कानून के माध्यम से इतर किया गया था। यह कहा गया था:

"यदि किसी प्रथागत कानून को किसी भी उद्देश्य, जो भी हो, के लिए मंजूरी दी जानी है और विशेष रूप से भारत के

संविधान के अनुच्छेद 341 के खंड (1) के तहत भारत के राष्ट्रपति द्वारा जारी अधिसूचना के दायरे को बढ़ाने के उद्देश्य से, तो यह कानून की शर्तों के अधीन ही एवं अन्यथा नहीं, किया जाना चाहिए। ”

इस संबंध में इस न्यायालय के संविधान पीठ के निर्णय, ई. वी. चिन्नैया आदि बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य एवं अन्य [ 2005 ] का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें यह प्रतिपादित किया गया था:

“आरक्षण पर, संवैधानिक योजना को ध्यान में रखते हुए एवं न कि राजनीतिक योजना के रूप में, सामाजिक उद्देश्य के दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिए। अतः अनुसूचित जातियों के सदस्यों को, दो या दो से अधिक, व्यक्तियों के समूहों अथवा जातियों के सदस्यों को न देकर, अनुसूचित जातियों के सदस्यों को एक समूह के रूप में, पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए।”

तथ्य यह है कि अनुसूचित जातियों के सदस्य पिछड़े वर्गों में सबसे पिछड़े हैं और आक्षेपित कानून पहले से ही इस आधार पर आगे बढ़ चुके हैं कि संविधान के अनुच्छेद 15 के खंड (4) और अनुच्छेद 16 के खंड (4) दोनों के संदर्भ में, उनका पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है। सूक्ष्म वर्गीकरण के माध्यम से एक और वर्गीकरण की अनुमति नहीं है। विभिन्न वर्गों के लोगों

का उनकी संबंधित जातियों के आधार पर वर्गीकरण किया जाना, तर्कसंगतता के सिद्धांत का उल्लंघन है। अनुच्छेद 341 के अनुसार, राष्ट्रपति की सूची से किसी भाग या जातियों के समूह को भी बाहर करना केवल संसद द्वारा ही किया जा सकता है। इसका तार्किक परिणाम यह होगा कि राज्य विधानमंडलों को ऐसा करने से मना किया गया है। संविधान के उद्देश्य के लिए अनुसूचित जातियों के सदस्यों को लाभ देने के लिए एक समान मानदंड अपनाया जाना चाहिए। आक्षेपित कानून, उपरोक्त संवैधानिक योजना के विपरीत होने के कारण उसे कायम नहीं रखा जा सकता है।

सबूत के भार का सभी युक्तियुक्त संदेहों से परे, पूरी तरह से निर्वहित किया जाना चाहिए। एन.ई. होरो, (ऊपर वर्णित) में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

"भले ही कोई महिला जन्म के आधार पर जनजाति की सदस्य न हो। सभी औपचारिकताओं का पालन करने के बाद उनकी शादी एक आदिवासी से हुई थी और जनजाति के बुजुर्गों की मंजूरी प्राप्त करने के बाद, पत्नी द्वारा, पति का अधिवास लेने के सिद्धांत के तहत, वह उस आदिवासी समुदाय से संबंधित हो जाएगी जिससे उसका पति संबंधित है।"

फिर भी, *वलसम्मा पॉल* में, (ऊपर वर्णित), में यह निर्णित किया गया था:

"एक उम्मीदवार जिसकी जीवन में लाभप्रद शुरुआत अग्र जाति में हुई थी और उसने लाभप्रद जीवन व्यतीत किया था, लेकिन उसे गोद लेने या विवाह या धर्मांतरण द्वारा पिछड़ी जाति में प्रत्यारोपित किया जाता है, वह अनुच्छेद 15 (4) या 16 (4) के तहत लाभ या आरक्षण के लिए पात्र नहीं होता है। इन श्रेणियों में स्वैच्छिक गतिशीलता द्वारा अनुसूचित जाति आदि का दर्जा प्राप्त करना, संविधान के साथ धोखाधड़ी है एवं यह संविधान के अनुच्छेद 15 (4) और 16 (4) के तहत, सौम्य संवैधानिक व्यवस्था की नीति को विफल कर देगा।"

इसलिए, यह किसी भी संदेह या विवाद से परे है कि एक व्यक्ति जो उच्च जाति का हिंदू है और अपने जीवन में किसी भी सामाजिक या शैक्षिक या पिछड़ेपन के अधीन नहीं है; केवल विवाह के कारण ही वह अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं बन सकता है। किसी ठोस सबूत के अभाव में, उसे वंचित लोगों के लिए कुछ सीटें आरक्षित करने के राज्य द्वारा किए गए प्रावधानों को विफल करने की अनुमति नहीं दी जाएगी।

उच्च न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में सही हो भी सकता है और नहीं भी कि, उच्च जाति से जाटव में धर्मांतरण के लिए विशेष समारोह की आवश्यकता नहीं थी, लेकिन विद्वान जिला न्यायाधीश द्वारा इस तथ्य के निष्कर्ष पर पहुंचा जाना कि उनकी शादी वैदिक हिंदू संस्कारों के अनुसार हुई थी और उनकी शादी को उनकी बिरादरी द्वारा स्वीकार किया गया है, जिसका अर्थ उनके पति के परिवार के बुजुर्गों से ही है, यह नहीं माना जा सकता है कि उन्हें उनके पति के समुदाय द्वारा स्वीकार किया गया था।

हम केरल राज्य एवं अन्य बनाम वी. चंद्र मोहनन, [ 2004 ] 3 एस. सी. सी. 429, में यह देख सकते हैं कि, तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने उक्त निर्णयों पर ध्यान देने के बाद राय दी:

"एक जनजाति के प्रथागत कानून न केवल उसकी संस्कृति वरन, उत्तराधिकार, विरासत, विवाह, देवताओं की पूजा आदि को भी नियंत्रित करते हैं। इस तथ्य के बावजूद कि विभिन्न जनजातियाँ एक ही क्षेत्र में लंबे समय तक रहती हैं, उनकी विशेषताएँ हैं अलग-अलग होती हैं। वे निर्विवाद रूप से विभिन्न देवताओं की पुजा करते हैं। उनकी अलग-अलग संस्कृतियाँ हैं। उनके रीति-रिवाज हैं भी अलग अलग हैं।"

यह आगे आलेखित किया गया:



"इससे पहले कि किसी व्यक्ति को संविधान (अनुसूचित जनजाति) आदेश, 1950, के दायरे में लाया जा सके, वह एक जनजाति से संबंधित होना चाहिए। राष्ट्रपति के आदेश का लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से एक व्यक्ति को जनजाति का सदस्य होने की शर्त को पूरा करना चाहिए और जनजाति का सदस्य बने रहना चाहिए। अगर बहुत समय पहले एक अलग धर्म में धर्मांतरण की वजह से वह/उसके पूर्वज रीति-रिवाजों, अनुष्ठानों और अन्य लक्षणों का पालन नहीं कर रहे हैं, जो जनजाति के सदस्यों द्वारा पालन किया जाना आवश्यक है और यहां तक कि उत्तराधिकार, विरासत विवाह आदि के प्रथागत कानूनों का पालन नहीं कर रहे हैं, उसे किसी जनजाति का सदस्य स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इस मामले में, यह तर्क दिया गया है कि पीड़ित के परिवार का लगभग 200 साल पहले धर्म परिवर्तन किया गया था और वास्तव में पीड़ित के पिता ने एक रोमन कैथोलिक महिला से शादी की, जहाँ से वह एक रोमन कैथोलिक बन गया। इसलिए सवाल यह हो सकता है कि, क्या उसका परिवार अनुसूचित जनजाति का सदस्य बना रहा या नहीं। इस तरह के सवाल पर ही गौर विचारण के दौरान ही किया जा सकता है।"

लिलीकुट्टी, (ऊपर वर्णित) में, न्यायमूर्ति ठक्कर ने डिवीजन बेंच की ओर से बोलते हुए स्पष्ट रूप से कहा कि एक बार प्रमाण पत्र रद्द हो जाने के बाद, चुनाव भी रद्द होने योग्य है। यह सच हो सकता है कि दिल्ली नगर निगम अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों के संदर्भ में, प्रथम प्रतिवादी के लिए यह आवश्यक नहीं था कि नामांकन दाखिल करने के समय वह जाति प्रमाण पत्र प्रस्तुत करे, जहां उस ओर से इस संदर्भवश घोषणा करना, उक्त उद्देश्य को पूरा करता है। लेकिन इस तरह का जाति प्रमाण पत्र इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए आवश्यक था कि यदि कोई विवाद या संदेह उत्पन्न होता है तो इस सवाल के संबंध में कि क्या नामांकन दाखिल करने के लिए पूर्ववर्ती शर्तों को पूरा किया जाता है या नहीं। निर्वाचन अधिकारी को प्रथम दृष्टया इस निष्कर्ष पर पहुंचने की आवश्यकता थी कि उम्मीदवार अनुसूचित जाति का था। उन्होंने इस आधार पर अनुसूचित जाति प्रमाण पत्र देने के लिए आवेदन किया कि वह जन्म से अनुसूचित जाति की हैं। उनका दावा गलत पाया गया है। जब तक कि यह तथ्य के रूप में स्थापित नहीं किया जाता है कि उन्हें समुदाय द्वारा अनुसूचित जाति के सदस्य के रूप में स्वीकार किया गया था, अपने पति के परिवार द्वारा अपनी शादी की स्वीकृति से अलग, हमारी राय में, वह अपने आरक्षण के लाभ का दावा नहीं कर सकती।

इसलिए हम सम्मान के साथ उच्च न्यायालय के निष्कर्षों के प्रति अपनी अस्वीकृति व्यक्त करते हैं।

शोभा हैमयती देवी में, (ऊपर वर्णित), यह निर्धारित किया गया था

" ..... सबसे पहले, हमें यह इंगित करना चाहिए कि उच्च न्यायालय ने, हमारे विचार में, सही निर्णय दिया है कि यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं था कि, अप्पाला राजू के साथ अपीलकर्ता की इस प्रथागत तरीके से शादी हुई जिसे भगथा समुदाय मानता है। दूसरी ओर, जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा देखा गया है, उपलब्ध साक्ष्य इंगित करते हैं कि विवाह उस रूप में अधिक था, जिसे सिस्टु कर्णम, जिस समुदाय से उनके पिता संबंधित थे, मानता है। दूसरा, जैसा कि उच्च न्यायालय ने देखा है, यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि अपीलार्थी को भीमावरम के भगथा समुदाय के सदस्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा साक्ष्य के आधार पर चर्चा की गई है इस मामले में, उपलब्ध संकेत यह था कि अपीलार्थी मुश्किल से भीमावरम गाँव में रहती थी जहाँ उसके नाना रहते थे एवं और उस समुदाय के लिए उसे उस समुदाय के सदस्य के रूप में मानने का कोई अवसर नहीं था। यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि अपीलार्थी ने उस समुदाय के जीवन के तरीके का पालन किया।"

एन. ई. होरो बनाम. श्रीमती. जहाँ आरा जयपाल सिंह, ए. आई.

आर. (1972) एस. सी. 1840, में यह निर्धारित किया गया था:

"..... अन्यथा भी, हमें इस स्थिति को स्वीकार करने में कठिनाई होती है कि एक गैर-आदिवासी जो एक आदिवासी से शादी करता है, वह आदिवासियों के लिए आरक्षित सीट पर चुनाव लड़ने का दावा कर सकता है। संविधान का अनुच्छेद 332 विधानसभाओं में अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटें आरक्षित रखने की बात करता है। इसका उद्देश्य स्पष्ट रूप से अनुसूचित जनजाति को विधानमंडल में प्रतिनिधित्व देना है, जो उक्त विशिष्ट सुरक्षा के हकदार हैं। गैर अनुसूचित व्यक्ति को, शादी के आवरण में, उक्त सीट से लड़ने की अनुज्ञा देना उक्त आरक्षण के उद्देश्य को परास्त करता है। इस न्यायालय का प्रकरण वलसम्मा पाँल बनाम कोचिन विश्वविद्यालय में निर्णय उक्त मत को संबल प्रदत्त करता है। यह तथ्य कि गैर पिछड़ी महिला ने अग्र पुरुष के साथ शादी की अथवा उसे उक्त समुदाय में, उक्त पिछड़े समुदाय के सदस्य के रूप में स्वीकार किया गया, उक्त दोनो तथ्य संविधान के अनुच्छेद 15(4) अथवा 16(4) के अंतर्गत, उक्त गैर पिछड़ी महिला को आरक्षण का लाभ नहीं दिला सकते हैं। माननीय न्यायमूर्तियों का, भूबम मोई

देबिया बनाम राम किशोर अचराज चौधरी और लल्लूभाँय बप्पूभाँय कैसिडास मूलचंद बनाम कासीबाई में मानना था कि शादी के बाद एक महिला अपने पति के परिवार की सदस्य बन जाती है और इस तरह वह उस जाति की सदस्य बन जाती है जिसमें वह चली गई है। जाति की कठोरता टूट जाती है और उसके लिए उस परिवार का सदस्य बनने में कोई बाधा नहीं होगी जिस परिवार से उसका पति संबंधित है और जिसमें वह खुद को प्रत्यारोपित करती है। इसके बाद, इस न्यायालय ने देखा कि समुदाय द्वारा मान्यता भी महत्वपूर्ण थी। तब भी, इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से निर्धारित किया कि, एक महिला की पिछड़े समुदाय के सदस्य के रूप में मान्यता, उसकी शादी को देखते हुए, संविधान के अनुच्छेद 16 (4) के तहत आरक्षण की पात्रता के उद्देश्य से प्रासंगिक नहीं होगी क्योंकि उसकी अगड़ी जाति के सदस्य के रूप में जीवन में लाभप्रद शुरुआत हुई थी और पिछड़े वर्ग के पुरुष के साथ विवाह उसे पिछड़े समुदाय को दिए गए आरक्षण की सुविधा का हकदार नहीं बनाएगा। उच्च न्यायालय ने इस निर्णय को संविधान के अनुच्छेद 332 के अनुसार चुनाव में आरक्षित सीट पर लागू किया गया है। हम कोई कारण नहीं देखते हैं कि, इस

न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुच्छेद 15 (4) और 16 (4) के तहत आरक्षण से संबंधित सिद्धांत, क्यों नहीं लोक सभा में या विधान सभा में अनुच्छेद 332 के तहत, अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित सीट के तत्सम्मत, संवैधानिक आरक्षण तक बढ़ाया जाना चाहिए। उक्त आरक्षण भी संवैधानिक आरक्षण हैं जिनका उद्देश्य वास्तव में लोगों को लाभ पहुंचाना है। वंचित और वे नहीं जो शादी के माध्यम से कक्षा में आते हैं। होरो में जिस हद तक निर्णय को उपरोक्त दृष्टिकोण के विपरीत कहा जा सकता है, उसे सही के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। अन्यथा भी, जनजातीय रूप में विवाह और समुदाय द्वारा स्वीकृति के संबंध में प्रासंगिक पहलुओं पर, साक्ष्य के अभाव में होरो में निर्णय अपीलार्थी के बचाव में नहीं आ सकता।”

संध्या ठाकुर बनाम विमला देवी कुशवाह और अन्य, जे. टी.

(2005) 1 एससी 556, में इस न्यायालय ने निर्णय दिया:

"वालसम्मा पॉल बनाम कोचीन विश्वविद्यालय और अन्य (ऊपर वर्णित) के निर्णय और आज शोभा हेमवती देवी बनाम सेट्टी गंगाधर स्वामी, में दिये गये हमारे निर्णय के आलोक में जिन्हें इस अपील के साथ सुना गया, यह

अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि अपीलार्थी, जो जन्म से पिछड़े वर्ग या समुदाय से संबंधित नहीं है, वह किसी पिछड़े वर्ग या समुदाय के लिए आरक्षित सीट पर चुनाव लड़ने के लिए हकदार नहीं होगा सिर्फ इस आधार पर कि उसका विवाह उक्त समुदाय के पुरुष के साथ हुआ था....।”

इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर आने में एक स्पष्ट त्रुटि की कि एक ओर संविधान के अनुच्छेद 15 (4) और 16 (4) और दूसरी ओर अनुच्छेद 330 और 332 के तहत आरक्षण के उद्देश्य अलग-अलग हैं।

शोभा हेमवती देवी , (ऊपर वर्णित), ने यद्यपि यह आलेखित किया कि, दी गई स्थिति में समुदाय द्वारा इस तरह के विवाह की स्वीकृति, उद्देश्य को पूरा करने के लिए मानी जा सकती है, लेकिन किसी भी वस्तुस्थिति में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि लोक सभा में या विधान सभा में अनुच्छेद 332 के तहत अनुसूचित जनजाति के लिए सीट का आरक्षण संवैधानिक आरक्षण है।

श्री जैन द्वारा निर्भर किए गए सभी निर्णयों में, अर्थात् अरुमुगम (ऊपर वर्णित), मोहन राव, (ऊपर वर्णित) और कैलाश सोनकर (ऊपर वर्णित), के अंतर्गत इस न्यायालय का संसर्ग उस व्यक्ति के धर्म परिवर्तन से था और पुनः धर्म परिवर्तन तब हुआ था जब वह व्यक्ति नाबालिग था।

ऐसे मामले में जाति के पुनरुत्थान का सिद्धांत लागू किया गया था। हालाँकि, जैसा कि वर्तमान में सलाह दी गई है, हमें उक्त प्रश्न पर आगे विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इससे इस मामले के उद्देश्य के लिए कुछ भी नहीं निकलता है।

उपरोक्त कारणों से, आक्षेपित निर्णय धारणीय नहीं हो सकता है जिसे तदनुसार अपास्त किया जाता है। अपील की अनुमति दी गई है। कोई लागत प्रदत्त नहीं की गई।

के. के. टी.

अपील की अनुमति दी गई।



यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेन्स टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी राहुल चौधरी (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।